A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

जैनाचार्य हरिभद्र सूरि का संस्कृत साहित्य में योगदान

राज किशोर आर्य

कूटशब्द *आगम, श्वेताम्बर, आगम ज्ञान, समराइच्चकहा*

जैनधर्म एवं दर्शन का भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। हरिभद्रसूरि जैनधर्म एवं दर्शन के महान् आचार्य थे। इन्होंने संस्कृत साहित्य के दर्शन, कथा, ज्योतिष, योग, स्तुति, आगमिक प्रकरण, आचार, उपदेश आदि विषयों को आधार बनाकर ग्रन्थों का प्रणयन किया। इस शोध-लेख में उनके जीवन एवं संस्कृत साहित्य में उनके योगदान के विषय को बतलाया गया है।

भारतीय मनीषा ने दर्शन, धर्म और संस्कृति-विषयक जो चिन्तन दिया, उसमें जैनदर्शन, जैनधर्म और जैनसंस्कृति का विशिष्ट स्थान है। जैन दर्शन के इतिहास में षष्ठ शतक से नवम शतक तक के काल को स्वर्णिम युग माना जाता है। इसे जैन दर्शन में मध्यकाल की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस काल को जैन सम्प्रदाय को समृद्ध बनाने वाले, वैदुष्य से परिपूर्ण एवं सारगर्भित रचनाओं को सामने लाने का गौरव प्राप्त है। इसी काल में जैन धर्म दर्शन तथा साहित्य पर अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के रचयिता श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रख्यात आचार्य हरिभद्र सूरि का प्रादुर्भाव हुआ, जिनका दूसरा नाम भवविरह सूरि भी था।[1]

आचार्य श्री जिनविजय ने हरिभद्र का जीवनकाल वि. स. 757 से 827 तक निर्धारित किया है।[2] इस निर्णय पर आने के अनेक प्रमाणों में से एक विशेष उल्लेखनीय प्रमाण उद्योतनसूरि कृत कुवलयमाला की प्रशस्ति गाथाएं हैं। उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला की समाप्ति का समय एक दिवस न्यून शक संवत् 700 अर्थात् शक संवत् 700 की चैत्र कृष्ण चतुर्दशी लिखा है और उन्होंने अपने न्यायशास्त्र के विद्यागुरु के रूप में हरिभद्र का नाम निर्देश किया है।[3]

इनके माता-पिता का नाम केवल कहावली में ही प्राप्त होता है। उसमें माता का नाम गंगा और पिता का नाम शंकर भट्ट कहा गया है। भट्ट शब्द ही सूचित करता है कि वह जाति से ब्राह्मण थे।[4] भद्रेश्वर की कहावली के अनुसार आचार्य हरिभद्र का जन्मस्थान का नाम 'पिवंगुई बभपुणी' कहा गया है। अन्य ग्रन्थों में उनका जन्म-स्थान चित्रकूट पर्वत का निकटवर्ती प्रदेश कहा गया है ।

ISSN 976-8645

कालान्तर में आचार्य हरिभद्र चित्तौड़ नामक नगरराज्य के राजा जितारि के राजपुरोहित भी बने। सुखलालजी संघवी ब्रह्मपुरी को चित्तौड़ के आसपास का ही एक कस्बा या नगर का ही एक भाग मानते हैं। कल्याणविजय के उल्लेखानुसार हरिभद्र ने पोरवाड़ जाति को जैन बनाया[5]।

उन्होंने एक बार जैनाश्रम के समीप जाते हुए साकिनी नाम की एक जैनसाध्वी से एक गाथा सुनी–

चक्कीदुग्गं हरिपणगं चक्कीण केसवो चक्की।

केसव चक्की केसव दु चक्की केसी अ चक्की अ॥[6]

इस गाथा को सुनकर उसका अभिप्राय जानने की जिज्ञासा प्रकट करने पर उसी साध्वी द्वारा प्रेरित हो ये जिनभद्रसूरि के पास पहुँचे, जिन्होंने इनके द्वारा जैन धर्म स्वीकार किये बिना इसका अभिप्राय स्पष्ट करने से मना कर दिया, इस कारण से इन्होंने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। इसीलिए ये अपने माता–पिता को भूलकर याकिनी–साकिनी–धर्मपुत्र कहलाने लगे।

आचार्य हरिभद्र सूरि 1444 ग्रन्थों के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हैं[7]। लेकिन संख्या की दृष्टि से इनके बहुत कम ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। कुछ आचार्यों ने संख्या–गणना को अतिशयोक्ति माना है। जैन दर्शन के इतिहास में अब तक इतने ग्रन्थों की रचना किसी भी एक विद्वान द्वारा नहीं की गई है। इनके ग्रन्थ संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं में निबद्ध हैं। हरिभद्र के ग्रन्थों की विवरणिका निम्नलिखित है।

आगम ग्रन्थों की टीकाएँ—अनुयोगद्वारविवृति, आवश्यकबृहत्टीका, आवश्यकसूत्रविवृति, चैत्रवन्दनसूत्रवृत्ति, जीवाभिगमसूत्र, लघुवृत्ति, दशवैकालिक टीका , नद्यायनटीका[9], पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति, प्रज्ञापनाप्रदेश व्याख्या।

आगमिक प्रकरण, आचार, उपदेश–अष्टक प्रकरण, उपदेश पद (प्राकृत) धर्मबिन्दु, पञ्चवस्तु (प्राकृत स्वोपज्ञ संस्कृत टीका युक्त) भावनासिद्धि, जम्बूद्वीप क्षेत्र समासवृत्ति, वर्गकेवलिसूत्रवृत्ति, बीस विंशिकाएं (प्राकृत), श्रावकधर्मविधिप्रकरण, श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति, सम्बोधप्रकरण, हिंसाष्टक।

दर्शन—अनेकान्तजयपताका (स्वोपज्ञ टीका युक्त), अनेकान्तवाद–प्रवेश, अनेकान्तसिद्धि, आत्मसिद्धि, तत्त्वार्थसूत्र लघुवृत्ति, द्विजवदन चपेटा, धर्मसंग्रहणी (प्राकृत) न्यायप्रवेशटीका, लोकतत्त्वनिर्णय, शास्त्रवार्तासमुच्चय (स्वोपज्ञ टीका युक्त), षड्दर्शनसमुच्चय, सर्वज्ञसिद्धि (स्वोपज्ञ टीका युक्त), स्याद्वादकुचोद्यपरिहार, न्यायावतार–वृत्ति[10]।

ISSN 976-8645

योग—योगदृष्टिसमुच्चय (स्वोपज्ञ टीका युक्त),योगबिन्दु, योगविंशतिका (प्राकृत) बीसविंशिका के अन्तर्गत], योगशतक (प्राकृत), षोडशक प्रकरण।

कथा—धूर्ताख्यान (प्राकृत), समराइच्चकहा (प्राकृत)

ज्योतिष—लग्नशुद्धि-लग्न कुण्डलिया (प्राकृत)।

स्तुति—वीर-स्तव, संसारदावानल स्तुति।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थ आचार्य हरिभद्र के नाम से प्रचलित हैं, परन्तु इसके लिए अधिक प्रमाणों की अपेक्षा है- अनेकान्तप्रघट्ट, अर्हच्चूडामणि, कथाकोष, कर्मस्तववृत्ति, चैत्यवन्दनभाष्य, ज्ञानपंचकविवरण, दर्शनसप्ततिका, धर्मलाभसिद्धि, धर्मसार, नाणायत्तक, नामचित्तप्रकरण, न्यायविनिश्चय, परलोकसिद्धि, पंचनियठी, पंचलिंगी, प्रतिष्ठा-कल्प, बृहन्मिथ्यात्वमंथन, बोटिक प्रतिषेध, यतिदिनकृत्य, यशोधरचरित्र, वीरांगदकथा, वेदबाह्यतानिराकरण, संग्रहणिवृत्ति, संपंचासित्तरी, संस्कृतात्मानुशासन, व्यवहारकल्प।

हरिभद्र की रचनाओं को देखने पर ज्ञात होता है कि वह बहुश्रुत विद्वान् थे। इन्होंने याकिनी महत्तरा को धर्ममाता के रूप में स्वीकार कर अपने को जैन साहित्य में प्रवीण बनाया। हरिभद्र ने जैन सिद्धान्तों को प्रकाशित किया और दूसरे दर्शनों के समक्ष उनकी सत्यता स्थापित की। उनकी साहित्यिक उपलब्धियां आश्चर्यजनक थीं। आचार्य अभयदेव ने अपने ग्रन्थ पञ्चाशकटीका के अन्त में लिखा है किया-

''समाप्ता चेयं शिष्यहिता नाम्नासितपटलप्रधानप्रावचनिक पुरुषप्रवरचतुर्दशशतसंख्या प्रकरणप्रबन्धप्रणायि सुगृहीतनामधेय श्रीहरिभद्रसूरिविरचित पञ्चाशकाख्य प्रकरणटीकेति''।[11]

हरिभद्र की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने प्रतिपक्षी के प्रति जैसी हार्दिक बहुमानवृत्ति प्रदर्शित की है, वैसी दार्शनिक क्षेत्र में किसी दूसरे विद्वान् ने कम से कम उनके समय तक तो प्रदर्शित नहीं की। स्वसम्प्रदाय के पुरस्कर्ता ऋषभ, महावीर आदि का जिन विशेषणों से वे निर्देश करते हैं, वैसे ही विशेषणों से उन्होंने बुद्ध का भी निर्देश किया है और कहा है कि बुद्ध जैसे महामुनि एवं अर्हत् की देशना, अर्थहीन नहीं हो सकती।

''न च तदपि न न्यायं यतो बुद्धो महामुनिः। सुवैद्यवद्विना कार्यं द्रव्यासत्यं न भाषते॥

'षड्दर्शनसमुच्चय' षड्दर्शनों बौद्ध, न्याय, सांख्य, जैन, वैशेषिक, मीमांसा के स्वरूप को समझने का प्राचीनतम ज्ञात संग्रह ग्रन्थ है। इसकी रचना उन्होंने केवल उन दर्शनों के मान्य देव और

ISSN 976-8645

तत्त्व को यथार्थरूप में समझने के लिए की थी न कि किसी मत के खण्डन करने की दृष्टि से। इन्होंने षड्दर्शन के अन्तर्गत चार्वाक दर्शन को भी स्थान दिया है।

दर्शनानि षडेवात्र मूलभेदव्यपेक्षया। देवतातत्त्वभेदेन ज्ञातव्यानि मनीषिभिः॥

बौद्धं नैयायिकं सांख्यं जैनं वैशेषिकं तथा। जैमिनीयं च नामानि दर्शनानाममून्यहो॥[16]

'समराइच्चकहा' प्राकृत गद्य भाषा में निबद्ध एक आख्यानात्मक धर्मकथा है। जिसकी तुलना महाकवि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' जैन काव्य 'यशस्तिलकचम्पू' और 'वसुदेवहिण्डी' से की जाती है। इसे नायक और प्रतिनायक के बीच जन्म-जन्मान्तरों के जीवन-संघर्षों की कथा का वर्णन करने वाला प्राकृत का एक महान उपन्यास कहा जाता है। प्रो. एम. सी. मोदी ने समराइच्चकहा की प्रस्तावना में कहा है कि-

"Haribhadra, however seems of have wandered for and wide in upper India with which he shows much acquaintance in his 'Samaraiccakaha' though he does not seem to have crossed the Vindhya Mountains. There is ample ground to believe that he must have also travelled in Eastern India where Buddhism still was flourishing. And it is there that he acquired sound knowlede of Buddhist Philosophy and Logic. He seems to have appreciated Buddhist Logic as is shown by his commentary on Dignaga's Nyaya. Pravesa and extensive quotation from and respectful mention of Dharmkirti. He also saved Mahanishitha from being destroyed.[17]

योगग्रन्थों के प्रणयन से पूर्व हरिभद्र ने एतद्विषयक अन्य भारतीय ग्रन्थों का गम्भीर आलोडन किया था। वे सांख्य-योग, शैव-पाशुपत और बौद्ध आदि परम्पराओं के योग-विषयक प्रस्थानों से विशेष परिचित थे। गीता के संन्यास शब्द को सर्वप्रथम हरिभद्र ने जैन-परम्परा में अपनाया। उन्होंने धर्मसंन्यास योगसंन्यास और सर्वसंन्यास के रूप में त्रिविध संन्यास का निरुपण किया। वे सदाशिव, परब्रह्म, सिद्धात्मा तथा तथता आदि सभी नामों को एक निर्वाण तत्त्व के बोधक कहकर उस नाम से निर्वाण तत्त्व का निरुपण एवं अनुभव करने की शक्ति के बारे में विवाद करने का निषेध करते हैं।

ISSN 976-8645

गीता में '**बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः**' पद आता है। हरिभद्र इस पद को लेकर बुद्धि की अपेक्षा ज्ञान की कक्षा और ज्ञान की अपेक्षा असम्मोह की कक्षा कैसी ऊँची है यह रत्न की उपमा देकर समझाते हैं और अन्त में कहते हैं कि सदनुष्ठान में परिणत होने वाला आगम ज्ञान ही असम्मोह है–

'इन्द्रियार्थाश्रया बुद्धिर्ज्ञानं त्वागमपूर्वकम्। सदनुष्ठानवचनैतदसम्मोहोऽभिधीयते॥

रत्नोपलम्भतज्ज्ञानतत्प्राप्त्यादि यथाक्रमम्। दूदोदाहरणं साधु ज्ञेयं बुद्ध्यादिसिद्धये॥''[19]

आचार्य हरिभद्र के साहित्य का अध्ययन करने से उनके दो रूप सामने आते हैं– एक वह रूप जो धूर्ताख्यान जैसे ग्रन्थों के लेखक के रूप में तथा आगमों की टीका के लेखक के रूप में है, इसमें आचार्य हरिभद्र एक कट्टर साम्प्रदायिक लेखक के रूप में सामने उपस्थित होते हैं। उनका दूसरा रूप वह है जो शास्त्रवार्तासमुच्चय आदि दार्शनिक ग्रन्थों में और उनके योगविषयक अनेक ग्रन्थों में दिखाई पड़ता है। इनमें विरोधी के साथ समाधानकर्त्ता के रूप में तथा विरोधी की भी ग्राह्य बातों के स्वीकर्ता के रूप में आचार्य हरिभद्र उपस्थित होते हैं। उनका यह दूसरा रूप सम्भवत: विद्यापरिपाक का फल है अतएव वह उनके जीवनकाल की उत्तरावधि में ही सम्भव है। जैनधर्म के बाह्य आचार–विचार के समर्थक के रूप में उनकी प्राथमिक स्थिति है, जबकि तात्त्विक धर्म के समर्थक के रूप में वे एक परिनिष्पन्न चिन्तक हैं। किसी भी अन्तर्मुख व्यक्ति के जीवन का ऐसा होना स्वाभाविक है। सम्भव है कि उन्होंने केवल योग के ग्रन्थ ही नहीं लिखे बल्कि कुछ योगसाधना भी की होगी। उसी के परिणामस्वरूप जीवन में धार्मिकता का स्थान उदारता ने ले लिया।[20]

दर्शन और योग के समान सर्जनात्मक साहित्य के क्षेत्र में भी हरिभद्र की अबाधगति थी। उनकी व्यंग्यप्रधान रचना धूर्ताख्यान है। इसमें पुराणों में वर्णित असम्भव और अविश्वसनीय बातों का प्रत्याख्यान पाँच धूर्तों की कथाओं द्वारा किया गया है। भारतीय कथा साहित्य में शैली की दृष्टि से इस कथा ग्रन्थ का मूर्धन्य स्थान है। लाक्षणिक शैली में इस प्रकार की अन्य रचना दिखलाई नहीं पड़ती। दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि व्यंग्योपहास की इतनी पुष्ट रचना अन्य किसी भाषा में सम्भवत: उपलब्ध नहीं है। धूर्तों का व्यंग्यप्रहार ध्वंसात्मक नहीं, निर्माणात्मक है। इस प्रकार विविध क्षेत्रों में हरिभद्र ने जो वैदुष्य का परिचय दिया है, वह स्पृहणीय है।

ISSN 976-8645

अन्तटिप्पणी

1. न्यायकुमुदचन्द्र, प्रस्तावना, भाग-१, पृ. ३३
2. दर्शनकेसरी, पृ. १३
3. संघवी, सुखलालजी, सन् १९६३, पृ. ८-९
4. हरिभद्रसूरिरचित, समराइच्चकहा, पूर्वार्द्ध, सं. पृ. १४
5. हरिभद्रसूरिविरचित, धर्मसंग्रहणी, प्रस्तावना, पृ. ७
6. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा-४२७
7. हरिभद्रसूरिविरचित, षड्दर्शनसमुच्चय,भाग-१, सं. पृ. ८६
8. संघवी, सुखलालजी, समदर्शी आचार्य हरिभद्र, राजस्थान ओरियन्टल सीरिज, जोधपुर, सं. ६८, सन् १९६३, पृ. ९
9. शर्मा राममूर्ति, पृ. ६३ पर उद्धृत
10. वही, पृ. ६३ पर उद्धृत
11. हरिभद्रसूरिरचित, समराइच्चकहा, पूर्वार्द्ध, सं. पृ. १४
12. संघवी, सुखलालजी, समदर्शी आचार्य हरिभद्र, राजस्थान ओरियन्टल सीरिज, जोधपुर, सं. ६८, सन् १९६३, पृ. १०९
13. शास्त्रवार्तासमुच्चय, पृ. ४६६
14. जैन महेन्द्रकुमार (व्या.), पृ. २
15. वही, पृ. ४५०
16. L. Suali, p. 2
17. समराइच्चकहा, प्रस्तावना, पृ. १७
18. योगदृष्टिसमुच्चय, पृ. ११९-१२०
19. योगदृष्टिसमुच्चय, पृ. ११९-१२०
20. षड्दर्शनसमुच्चय, प्रस्तावना, पृ. १६
21. शास्त्री, नेमिचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ४७४

ISSN 976-8645

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. रूद्रप्रकाश, षड्दर्शनसमुच्चय, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
2. समदर्शी आचार्य हरिभद्र, राजस्थान ओरियन्टल सीरिज, जोधपुर, सं. ६८
3. संयमकीर्तिविजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१२
4. भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली, २००८
6. हरिभद्रसूरिविरचितषड्दर्शनसमुच्चय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, २००९
7. Shad-Darsana-samuccaya with Gunaratna's commentary Tarkarahasy-adipik, The Asiatic Society, Calcutta, 1986